

## धर्म की अवधारण : वेदों, उपनिषदों एवं कतिपय धर्मग्रन्थों की पृष्ठभूमि में



डॉ० अंजना कुमारी,  
एम.ए., पीएच.डी. (दर्शनशास्त्र)  
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

### परिचय :

प्रत्युत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में वेद से लेकर समकालीन भारतीय चिन्तकों के अनुसार 'धर्म' के स्वरूप एवं 'धर्म' की परिभाषा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। क्रमशः गीता और रामचरितमानस में वर्णित 'धर्म' की अवधारणा का अध्ययन करने की योजना है। गीता और रामचरितमानस में वर्णित 'धर्मक' को अवधारणा के अध्ययन के पूर्व भारतीय संस्कृति में 'धर्म' का प्रयोग मुख्य रूप से किन-किन अर्थों में हुआ है, उसकी जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकरण में वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र या ख्यति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत पुराणादि में वर्णित धर्म की अवधारणा का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है। यों तो धर्म की परिभाषा देने के क्रम में उपर्युक्त ग्रन्थों में वर्णित 'धर्म' के मुख्य तत्वों की चर्चा कर दी गयी है लेकिन इन धर्मग्रन्थों में वर्णित 'धर्म' की अवधारणा का अध्ययन किया जायेगा।

यों तो 'धर्म' का स्वरूप भारतीय धर्मशास्त्रों में जितना व्यापक और क्रमिक है उतना वेद या उपनिषदों में नहीं है। फिर भी वेद या उपनिषद् हमारे धर्म और दर्शन के प्रारंभिक एवं मौलिक आधार है। इसलिए किसी भी दार्शनिक एवं जाति नष्ट हो जाती है एवं जाति धर्म के लुप्त हो जाने से व्यक्तिगत धर्म का क्षेत्र और सुयोग नष्ट हो जाता है। सबसे पहले जाति की रक्षा करनी चाहिए; तभी व्यक्ति की आध्यात्मिक नैतिक और आर्थिक उन्नति निरापद बनायी जा सकती है। वर्णायित धर्म को भी युगधर्म के साँचे में ढालकर यदि उसे गठित नहीं किया जाय तो महान् युग धर्म की प्रतिकुल गति से वर्णापित चूर्ण-विचूर्ण और नष्ट हो जाता है। क्षुद्र सदा ही महान् का अंश और सहायक होता है, इस सम्बन्ध की विपरीत अवस्था में धर्म लेकर संभूत घोर अनिष्ट होता है, क्षुद्र और महान् धर्म की बीच विरोध होने पर

क्षुद्र धर्म का परित्याग करके महान् धर्म का आचरण करना ही मंगलप्रद होता है।

## धर्म और सम्प्रदाय

धर्म के रूप की व्याख्या के क्रम में धर्म सम्प्रदाय के संबंध का संक्षिप्त उल्लेख करना प्रासंगिक और आवश्यक है। आज विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में जिन विभिन्न धर्मों का पठन-पाठन किया जा रहा है वे वास्तव में धर्म नहीं, सम्प्रदाय हैं। इन धर्मों के प्रवर्तक हैं और इनकी शुरुआत किसी खास काम-खण्ड में हुई है। विद्वानों की मान्यता है कि केवल हिन्दू-धर्म ही एक ऐसा धर्म है, जिसकी शुरुआत किसी महापुरुष विशेष से नहीं है और न उसकी शुरुआत की अवधि ही निश्चित हैं। यही कारण है कि केवल हिन्दू-धर्म को यदा-कदा सनातन धर्म भी कहा जाता है। धर्म के रूप की व्याख्या के क्रम में यह स्पष्ट रूप से बतलाया गया कि धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है— इनमें ‘स्वभाव’ प्रमुख है। मनुष्य का स्वभाव एक है। मनुष्य स्वभावतः भौतिक सुखों से तृप्त नहीं है। उसकी आत्मा शाश्वत सुख की ओज में है। शाश्वत सुख की प्राप्ति ही मानव का सच्चा और एकमात्र धर्म है। इस तरह धर्म मूलतः एक है, अनेक नहीं है।

## सनातन धर्म और विशेष धर्मों का सम्बन्ध :

सनातन धर्म या सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म की अलग-अलग व्याख्या की प्रत्युति से ऐसा समक्ष लेना कि ये दोनों धर्म एक-दूसरे से पृथक् और सर्वदा भिन्न हैं, भासक होगा। सामान्य धर्म या सनातन धर्म की साधना व्यक्तिगत और कामगत होती है। कहने का अर्थ यह है कि यदि सनातन धर्म निरपेक्ष है तो उसकी साधना सापेक्ष है। विशेष धर्मों के द्वारा ही सनातन धर्म की प्राप्ति होती है। इसलिए विशेष धर्म सनातन धर्म से अलग नहीं है। यदि सनातन धर्म मूल है तो विशेष धर्म उसकी शाखाएं और टहनियाँ हैं जिनके द्वारा सनातन धर्म की सार्वभौमता और व्यापकता परिलक्षित होती है। ये विशेष धर्म अपने-अपने ढंग से सनातन धर्म ही सिद्धि करते हैं। इस तरह सनातन धर्म और विशेष धर्म एक दूसरे के पूरक हैं। सनातन धर्म के अभाव में विशेष धर्म का भी रूप विकृत हो जायेगा। सनातन धर्म आधार है, भूमि है जिसपर विशेष धर्म की विभिन्न आधृतियाँ चित्रित हैं। इस संबंध में भारतीय मनोषी महर्षि अरविन्द का विचार अत्यन्त समीचीन है।

## कुल धर्म

परम्परा से चले आ रहे परिवार के नियमों एवं आधारों क्रियान्वयन ही कुल धर्म कहा जाता है।

## युग धर्म

धर्मशास्त्रों की यह मान्यता है कि प्रत्येक युग के अपने धर्म एवं नैतिक आदर्श हैं। सत्युग में तप, वेता में ज्ञान, द्वापर में या, कलि में केवल दान या ईश्वर नाम कीर्तन ही श्रेष्ठ धर्म कहा गया है।

## राजधर्म

राजा के लिए जो कर्तव्य है, चाहे वे प्रजा हो, देश के प्रति हो, वे सभी राजधर्म कहे जाते हैं। राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह धर्म और नीति का जानकार हो। सज्जनों की रक्षा एवं दूर्जनों को दण्ड देना राजा का प्रमुख कर्तव्य है। राज्य में सुख-शान्ति एवं समृद्धि बनाए रखना उनका लक्ष्य है।

## आपद् धर्म

सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्मों के अतिरिक्त हमारे धर्मशास्त्रों में आपदधर्म की भी चर्चा है। देश काल एवं परिस्थिति के कारण हमारे जीवन में कुछ अवसर भी आते हैं जहाँ हमें अपना जीवन निर्वाह करना तथा कर्तव्य पालन करना असम्भव होने लगता है। ऐसी स्थिति में हमारे शास्त्रों में आपद् धर्म का विधान है।

## वर्ण धर्म

वर्ण धर्म का तात्पर्य विभिन्न धर्मों के कर्तव्यों और नियमों से है। ब्राह्मण के लिए वेद पढ़ना एवं वेद पढ़ाना, या करना एवं करना, दान देना एवं लेना प्रधान कर्तव्य है। क्षत्रिय के लिए प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और विषय में अनासक्त रहना प्रमुख कर्तव्य है। वैश्य के लिए पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना एवं कृषिकर्म करना प्रमुख कर्तव्य हैं, शुद्रों के लिए उपर्युक्त तीन वर्णों की सेवा करना प्रमुख कर्तव्य है।

## आश्रम धर्मः

ब्रह्मचर्य आश्रम में इन्द्रियों का निग्रह और वेदाध्ययन प्रमुख कर्तव्य है। गृहस्थाश्रम दूसरा आश्रम है। यह सभी आश्रमों का प्राण है। मनुसमृति में कहा गया कि जिस प्रकार प्राण वायु का आश्रय लेकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं। उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर सभी आश्रम चलते हैं। इसकी अवधि 25 साल से 50 साल की अवस्था है। धर्म के तहत धनोपार्जन, परिवार का भरण-पोषण, दान पुण्य तक अन्य सामाजिक कार्य इस आश्रम के मुख्य कर्तव्य हैं।

## निष्कर्ष

धार्मिक क्रियाओं में निष्काम कर्मता का भाव जुटता गया और वैदिक काल में ही धर्म का अन्तिम प्रयोजन आत्मसाक्षात्कार या आत्मा और परमात्मा का मिलन है। उपनिषदों में भी धर्म शब्द मुख्य रूप से इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय दर्शनों में खासकर मीमांसा और वैशोषिक दर्शन में धर्म शब्द का प्रयोग लौकिक यश और पारलौकिक मोक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में ‘धर्म’ शब्द अनेक अर्थों में आया है जिनमें मुख्य रूप से धर्म शब्द का प्रयोग वस्तुओं एवं प्राणियों के स्वभाव, परमात्मा-प्राप्ति के साधन, महाजनों के उपदेश के अर्थ में हुआ है। महाभारत में ‘धर्म’ शब्द का उत्कर्ष तो वहाँ तक बतलाया गया है कि जिस धर्म में दूसरे धर्म की निन्दा नहीं हो, वही सच्चा धर्म है। जिस धर्म में अन्य धर्मों को ओठा दिखलाया जाय, वह धर्म नहीं, कुधर्म है। यह भारतीय धर्म-अवधारणा की पराकाष्ठा है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. आश्रेय, भीखनलाल : “भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, लखनऊ हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1664.
2. उपाध्याय, आचर्य बलदेव : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, वाराणसी, चौखम्भा, ओरियन्टलिया, 1676.
3. चट्टोपाध्याय, देषीप्रसाद : भारतीय दर्शनः सरल परिचय.
4. वही पृष्ठ.
5. झा, पी० : पूर्व मीमांसा इन इट्स सोर्सेज, वाराणसी, हिन्दी यूनिवर्सिटी प्रेस, 1642.

## निष्कर्ष

दर्शनशास्त्र अथवा व्यवस्थित दार्शनिक तकनीकि अर्थ में नहीं है फिर भी उनकी रचनाओं में तत्व मीमांसीय विचार पूर्णतया यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। वस्तुतः साहित्य के माध्यम से भी तत्वमीमांसीय विचारों की अभिव्यक्ति साहित्यकारों और विशेष रूप से कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गयी है। पाश्चात्य दर्शन साहित्य में वर्डरवर्थ, ब्राउनिंग और भारतीय साहित्य में बाल्मीकी, कालीदास, रविन्द्रनाथ ठाकुर तथा अनेक ऐसे महाकवि हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा जीवन जगत और सत्ता के संबंध में विवेचना प्रस्तुत किया है। गोरखामी तुलसीदास इसी कोटि में आते हैं इसलिए इस आलेख में प्रस्तुत उनके त्व मीमांसीय विचारों की दार्शनिक महत्ता स्पष्ट रूपेण दृष्टिगत होती है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, 'तुलसी दर्शन', साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1967, पृ. 55–56.
2. डॉ० बलदेव उपाध्याय, 'भारतीय दर्शन', चौखम्बा ओरियन्टलिया, पोस्ट बॉक्स नं. 1032, वाराणसी, 221001, उ.प्र. भारत, 1984, पृ. 385.
3. वही पृष्ठ.
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रंथ रत्नालय कार्यालय, बम्बई, दिसम्बर 1959, पृ. 50.
5. वही पृष्ठ.
6. रामचरितमानस, बालकाण्ड-143.3, प्रकाशक मोतीलाल जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 156.